ॐ

महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता और अध्यात्म

एवम्

'यथार्थ गीता' पढ़ने से लाभ

1. महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता और अध्यात्म

भारतीय मनीषियों ने शास्त्र को सदैव दो दृष्टियों से लिखा है– एक इतिहास को कायम रखना जिससे लोग पूर्वजों के पदचिह्नों पर चलते हुए मर्यादित जीवन जी सकें, संस्कृति का निर्वाह करते हुए सुखमय जीवन-यापन कर सकें; लेकिन केवल सुखमय जीवन-यापन कर लेने मात्र से कल्याण सम्भव नहीं है क्योंकि मानव-जीवन जन्म और मृत्यु के बीच का एक पड़ाव ही तो है इसलिए किसी ने जीवन को सुव्यवस्थित काट ही लिया तो इसमें उसका कल्याण कदापि नहीं है। इसिलिए मनीषियों ने शास्त्र-रचना का दूसरा दृष्टिकोण अध्यात्म अपनाया। हर जीव माया के आश्रित है। इसे माया के चंगुल से निकालकर आत्मा की अधिकृत भूमि में खड़ा कर देना, आत्मा को जागृत कर परम तत्त्व परमात्मा तक की दूरी तय करा देना, परमात्मा का दर्शन, स्पर्श और उसमें स्थिति प्रदान कर देना जीव का परम कल्याण है जिसका नाम है भक्ति! भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– अर्जुन! न तो मैं वेद से, न यज्ञ से, न दान से, न तप से ही प्राप्त होनेवाला हूँ बल्कि,

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ *(गीता, 11/54)*

अनन्य भक्ति के द्वारा मैं इस प्रकार प्रत्यक्ष देखने के लिए, जैसा तुमने देखा है, स्पर्श करने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए भी सुलभ हूँ। इस प्रकार इस तड़पती हुई जीवात्मा को परम श्रेय पद दिला देना ही भारतीय मनीषा का प्रधान दृष्टिकोण रहा है। विश्व में युद्ध होते ही रहे हैं – चाहे वह महाभारत हो, राम-रावण युद्ध हो अथवा पुराणों में वर्णित प्रत्येक उपाख्यान – सबकी संरचना इन्हीं दोनों दृष्टियों से हुई है। महापुरुषों ने वास्तव में घटित इन प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं के उदाहरणों द्वारा

अन्तरंग साधना के वैदिक तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। महाभारत का भीषण संग्राम निःसन्देह हुआ किन्तु इस युद्ध के नायक भगवान श्रीकृष्ण जानते थे कि जिस सुख के लिए यह युद्ध लड़ा जा रहा है, वह सुख जीतनेवाले को भी नहीं मिलेगा इसलिए उन्होंने आध्यात्मिक दर्शनशास्त्र के रूप में एक ऐसा युद्ध बताया जिसमें एक बार विजय मिल गयी तो शाश्वत विजय–जिसके पीछे हार नहीं, सदा रहनेवाला जीवन–जिसके पीछे मृत्यु नहीं, सदा रहनेवाली शान्ति–जिसके पीछे अशान्ति नहीं। इसके लिए भगवान ने धर्मशास्त्र गीता प्रसारित कर अर्जुन इत्यादि पात्रों को प्रत्येक मनुष्य में निहित आन्तरिक क्षमताओं के प्रतीक के रूप में लेते हुए आन्तरिक युद्ध का सूत्रपात् कर दिया और शाश्वत सत्य को प्राप्त करने का द्वार सबके लिए खोल दिया। अन्तःकरण की दो वृत्तियाँ पुरातन हैं। एक है दैवी सम्पद् जो परमदेव परमात्मा तक की दूरी तय कराकर, उनका दर्शन, स्पर्श और उनमें प्रवेश दिलाकर परमात्मा में ही विलीन हो जाती है; और दूसरी है आसुरी सम्पद् जो प्रकृति के अन्धकार में भटकाती ही रहती है, जिसमें आवागमन का अन्तहीन चक्र है जो रुकता कभी नहीं, पहुँचाता कहीं नहीं, जिसमें जीव क्लेश पर क्लेश ही पाता है। जीव को इस भटकाव से निकालकर उस अविनाशी पद को देनेवाली साधना पद्धति गीता है।

धन-ऐश्वर्य से मदान्ध लोग समझाने से भी नहीं समझते। सर्वस्व दाँव पर लगाकर लड़ते-लड़ते विजयश्री मिली तब समझ में आया कि यह भी एक धोखा ही था। उस समय मनुष्य समझने लायक होता है। यही महाभारत युद्ध के विजेता युधिष्ठिर के साथ भी हुआ। इस युद्ध के उपरान्त वह 36 वर्षों तक सिंहासन पर बैठे किन्तु उनके आँसू एक पल के लिए भी नहीं रुके। एक दिन जब उन्होंने सुना कि भगवान श्रीकृष्ण ने धरा-धाम का त्याग कर दिया, वह सिंहासन से उठे और चुपचाप हिमालय की ओर चल पड़े।

दुर्योधन का एक भाई युयुत्सु इस युद्ध के आरम्भ में युधिष्ठिर की ओर आकर कहने लगा– भैया! धर्म आपके पक्ष में है, मैं आपकी ओर से लड़ूँगा। युधिष्ठिर ने उससे कहा– तुम्हें लड़ने की क्या आवश्यता! तुम समझदार हो, शिविर की व्यवस्था देखो। युद्ध के पश्चात् भी वह जीवित था। युधिष्ठिर को जाता हुआ देख वह बोला– भैया! कहाँ चले? कोई उत्तर नहीं मिला। उसने पुनः कहा कि इस रत्नजटित सिंहासन पर कौन बैठेगा? युधिष्ठिर ने कहा– तू बैठ ले। उसने कहा– यह हमें नहीं चाहिये। युधिष्ठिर ने कहा– इसी के लिए लगभग छः अरब शूरवीर मर गये। रक्त की सरिता के ऊपर रखे इस सिंहासन पर बैठकर देख तो ले कि इसमें कितना सुख है। उसने कहा– यह उसे किसी काल में भी नहीं चाहिये।

युधिष्ठिर ने कहा– तू इस पर बैठता तो मुझे प्रसन्नता होती किन्तु यदि यह तुम्हें नहीं चाहिये तो परीक्षित कहीं होगा, उसे बता देना। वह बैठेगा तो ठीक, और नहीं बैठेगा तब भी कोई हानि नहीं है। कौन नश्वर के पीछे आँसू बहाता फिरे...। ऐसा कहते हुए भाईयों और द्रौपदी सहित महाराजा युधिष्ठिर ध्यान-संयमपूर्वक गीतोक्त पथ पर आयुपर्यन्त के लिए हिमालय की ओर निकल गये, उस युद्ध-पथ पर बढ़ गये जिसमें विजय होने पर शाश्वत विजय है। ज्योतिर्मय परमात्मा की साधना-पद्धति है गीता!

'महाभारत युद्ध हुआ'–यह ऐतिहासिक सत्य है किन्तु वह युद्ध तो आया और गया जबकि सदा रहनेवाला जीवन, सदा रहनेवाला सत्य गीता का यही उपदेश है। यह धर्मशास्त्र है। स्वयं भगवान ने गीता को शास्त्र कहा– **'इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।'** *(गीता, 15/20)*– अर्जुन! यह गोपनीय से भी अति गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया। इसका जो यथावत् पालन करेगा उससे प्रिय मेरा सृष्टि में कोई नहीं होगा। उसी गीता का यथावत् भाष्य 'यथार्थ गीता' है। आप सब इसका अनुशीलन कर परमश्रेय के भागी बनें।

❐ ❐ ❐

2. 'यथार्थ गीता' पढ़ने से लाभ

गीता सृष्टि का आदि धर्मशास्त्र है। गीता में है कि अविनाशी योग को भगवान ने सृष्टि के आरम्भ में सूर्य से कहा था, जो कालक्रम से विलुप्त हो गया था। महाभारत युद्ध के आरम्भ में वही ज्ञान भगवान की अनुकम्पा से भगवद्गीता के रूप में दूसरी बार प्रकाश में आया। दूसरी बार भी जब इसे कहा गया, धर्म के नाम पर आज के प्रचलित सम्प्रदायों में से किसी का जन्म भी नहीं हुआ था। सम्पूर्ण विश्व का धर्मशास्त्र गीता थी। सबसे प्राचीन गीता को एकमात्र धर्मशास्त्र होने का गौरव प्राप्त है। इसे स्वयं परमात्मा ने कहा; उनके किसी दूत ने नहीं। उन्होंने इसे किसी कबीले के हित के लिए नहीं कहा, बल्कि संसार के मानव मात्र को अपना विशुद्ध अंश मानते हुए कहा। भगवान ने इसे शास्त्र कहा– **'इति गुह्यतमं शास्त्रम्'** *(गीता, 15/20)*; और सचेत भी किया कि जो इस शास्त्रविधि को न मानकर मनमाना आचरण करता है, वह सफलता, सिद्धि, परम गति इत्यादि कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता, वह इन सबसे वंचित हो जाता है *(गीता, 16/23)*।

जिन परमात्मा के आप विशुद्ध अंश हैं, उन्हीं भगवान के श्रीमुख से कही गयी यह गीता आपका आदिशास्त्र है जिसके अनुसार आचरण करने से चार–छः महीने में ही परमात्मा आपके अन्तःकरण में निर्देश देने लगते हैं। आप पायेंगे कि सब ओर से आपकी सुरक्षा और मनोकामनाओं की पूर्ति होने लगी है। इसमें बताये गये साधन का स्वल्प अभ्यास भी आपको जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्ति दिलाकर एक परमात्मा की प्राप्ति करा कर ही शान्त होता है। इस जन्म में जहाँ तक साधन करते बना है, वह कभी नहीं मिटता; साथ ही अगले जन्मों में उसके आगे की साधना स्वतः होने

लगती है। हर जन्म में एक ही साधना आगे बढ़ती है इसलिए धर्म-परिवर्तन होता ही नहीं।

मध्यकालीन भारत में मुसलमान और ईसाई आक्रमणकारियों के हाथ का छुआ एक ग्रास चावल खाने और उनके हाथ से एक घूँट पानी पी लेने मात्र से हिन्दू धर्म को नष्ट मान लिया जाता था, उसको हिन्दू–धर्म से बहिष्कृत कर दिया जाता था। यदि वही धर्म था तो आज सबने सबका छुआ खा लिया, तब तो सबका धर्म नष्ट हो जाना चाहिए। उन दिनों समुद्र पार करने से लोगों को धर्म और जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। आज समुद्र पार जाने को लोग अहोभाग्य मानते हैं। वस्तुतः छूने, खाने, समुद्र पार करने या सांसारिक किसी भी क्रियाकलाप से धर्म नष्ट नहीं होता।

भ्रान्तियों का कारण था व्यवस्थाकारों द्वारा आदि धर्मशास्त्र गीता पर प्रतिबन्ध लगाना कि गीता घर में रखो ही मत, नहीं तो लड़का संन्यासी हो जायेगा। गीता तो संन्यासियों के लिए है जबकि गीता के वक्ता भगवान श्रीकृष्ण और श्रोता अर्जुन दोनों गृहस्थ ही थे। गीता महाभारत का अंश है तो व्यवस्थाकारों ने प्रचार कराया कि महाभारत पढ़ना ही मत, नहीं तो घर में महाभारत हो जायेगा। उन्होंने स्त्रियों और बहुसंख्य जनता को शिक्षा से वंचित कर दिया कि देववाणी संस्कृत सभी पढ़ नहीं सकते जिससे कि लोग वास्तविकता समझ न सकें। उन्होंने अपनी सुविधा के लिए मनमाने ढंग से वर्ण को जाति घोषित कर, किसी को ऊँच और किसी को नीच कहकर समाज में घृणा और फूट की दीवार खड़ी कर दी। धर्मशास्त्र गीता के अभाव में जिसने जो भी कहा, धर्म होता गया। शोषित लोग कहीं विद्रोह न कर दें तो उनसे शस्त्र छीन लिया गया कि शस्त्र केवल क्षत्रिय उठा सकता है। सौ में सात क्षत्रिय; उनमें भी स्त्री, बच्चे। लड़नेवाले केवल

दो-तीन। यदि उन पर विजय कर लें तो शेष लोगों को पशुओं की तरह हाँक ले जायँ। यही हुआ भी। आपसी फूट का लाभ उठाकर विदेशी आक्रमणकारी इन्हें पशुओं की तरह ले गये, उन्हें काट डाला गया या दो-दो रुपये में बेच दिया गया।

आज तो वरिष्ठ राजनेता भी कहने लग गये हैं कि हिन्दू तो कोई धर्म ही नहीं है, मात्र जीवन-यापन शैली है। इससे अधिक कुछ भी नहीं है क्योंकि इनके पास सर्वमान्य कोई एक धर्मग्रन्थ नहीं है।

यह सब आज धर्मशास्त्र गीता को भूल जाने का दुष्परिणाम है। आज भी गीता की हजारों व्याख्यों उपलब्ध हैं किन्तु किसी भी टीका में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि वर्ण क्या हैं?, वर्णसंकर क्या है?, गीता में कर्म किसे कहा गया?, वास्तविक यज्ञ क्या है?, युद्ध?, शरीर-यात्रा?, भजन किसका करें?, क्यों करें?, कैसे करें?, धर्म में कौन-कौन सी बातें आती हैं?, धर्म की स्पष्ट परिभाषा क्या है?, देवता और असुर क्या हैं?–इन सबका कोई संतोषजनक समाधान नहीं मिलता। हजारों वर्षों के अन्तराल से गीता का आशय विलुप्त हो चला है तो उन्हीं भगवान के निर्देशन में लिखी गयी गीता की यह अद्वितीय व्याख्या 'यथार्थ गीता' आपके समक्ष है जिसमें आप इन सभी प्रश्नों का समाधान पायेंगे। यह टीका आपको धर्म की स्पष्ट जानकारी देती है जिससे आप धर्म के नाम पर हो रहे शोषण, अन्धविश्वास, भ्रान्तियों और वैचारिक दासता से अनायास मुक्ति पा जायेंगे; धर्म का नाम लेकर कोई भी आपको कभी भी बहका नहीं सकेगा।

गीता के एक श्लोकांश की गलत व्याख्या कर व्यवस्थाकारों ने प्रचार किया कि वर्ण या जाति, उनका ऊँचा-नीचा कर्म भगवान का बनाया हुआ है, ऐसा गीता में है। जबकि 'यथार्थ गीता' में उसी श्लोक की व्याख्या में है कि वर्ण साधना के क्रमोन्नत सोपान हैं, सभी मनुष्यों के हृदय में होते

हैं, बाहर वर्ण होते ही नहीं। भगवान ने समाज में किसी को ऊँच या किसी को नीच नहीं पैदा किया। सभी भगवान के विशुद्ध अंश हैं। सभी उतने ही पावन हैं जितने स्वयं भगवान। भजन का अधिकार उन सबको है जिन्हें मनुष्य–शरीर मिला हुआ है, चाहे उनका जन्म कहीं भी हुआ हो, वे गोरे-काले कुछ भी हों। भारतीय समाज में व्याप्त विषमतामूलक जाति-व्यवस्था का 'यथार्थ गीता' से सुन्दर समाधान अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। धार्मिक भ्रान्तियों के उन्मूलन के लिए, छुआछूत, भेदभाव और मजहबी कट्टरता से मुक्ति पाने के लिए 'यथार्थ गीता' का पाठ अनिवार्य है।

'यथार्थ गीता' की इस प्रति को आप अक्षत-चंदन छिड़क कर, आलमारी में बन्द कर न रख दें बल्कि यह बच्चों, वयोवृद्धों, नर-किन्नर तथा महिलाओं – सबको पढ़ने के लिए हाथोहाथ देने का पुण्य लें। घरों में, बच्चों के बस्ते में, सामूहिक प्रार्थना या उत्सव-स्थलों पर 'यथार्थ गीता' के अखण्ड पाठ से सुख, शान्ति और समृद्धि की वृद्धि होती देखी गयी है। जहाँ तक 'यथार्थ गीता' पाठ का स्वर गूँजता है अभिशप्त, दुष्ट आत्मायें वहाँ से भाग जाती हैं *(देखें, गीता 11/36)*; अक्षय सुख, शाश्वत शान्ति, परिवार में समृद्धि, एकता तथा समरसता का स्रोत उमड़ पड़ता है। आदि धर्मशास्त्र गीता की यथावत् व्याख्या 'यथार्थ गीता' का प्रचार-प्रसार कर आप अजस्र पुण्य के भागी बनें तथा गाँव-गाँव, नगर-महानगर.... सर्वत्र.... दूर-दूर तक गीता पाठ सुन रहे लोग भी कल्याण के भागी बनें, धर्म का सही स्वरूप समझ सकें।

यदि गाँव-गाँव में यथार्थ गीता का अखण्ड पाठ होगा तो गीता ही धार्मिक भ्रान्तियों का उन्मूलन कर देगी। आपको किसी से धर्म पूछना नहीं पड़ेगा।

'यथार्थ गीता' के आलोक में श्रीमद्भगवद्गीता में धर्म के मुख्य सिद्धान्त निम्नांकित हैं–

1. **श्रीमद्भगवद्गीता सृष्टि का आदिशास्त्र है।** भगवान ने कहा–

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ *(गीता, 4/1)*

अर्जुन! इस अविनाशी योग को हमने आरम्भ में सूर्य से कहा, सूर्य ने इसे ही मनु से कहा तथा मनु से ही मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है, इसलिए गीता सृष्टि का आदि धर्मशास्त्र है। (मनु की वंश-परम्परा में होने से विश्व के सभी मानव मनुज या मनुष्य कहे जाते हैं। गीता मनु से भी पूर्व सूर्य से कही गयी इसलिए यह सृष्टि का आदिशास्त्र है। पहले इस शास्त्र का नाम अविनाशी योग था। यह विस्मृत हो गया था, द्वापर में भगवान ने ही इसे पुनः कहा इसलिए इसे भगवान द्वारा कहा गया अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता कहा जाता है। इसमें उसी ज्ञान की पुनरावृत्ति है जिसे भगवान ने सृष्टि के आदि में सूर्य से कहा था। महाभारत युद्ध से लगभग 5200 वर्ष के लम्बे अन्तराल में आज गीता का आशय पुनः खो गया था, भगवान की प्रेरणा से ही जिसका यथावत् भाष्य 'यथार्थ गीता' के रूप में है।); जिसके अनुसार एक परमात्मा ही सत्य है, परम तत्त्व है, सनातन है, वह कण-कण में व्याप्त है। योग साधना के द्वारा वह परमात्मा दर्शन, स्पर्श और प्रवेश के लिए सुलभ है।

2. **ईश्वर का निवास हृदय देश में है।** भगवान ने कहा–

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ *(गीता, 13/17)*

परमात्मा ज्योतियों का भी ज्योति है। अन्धकार से अत्यन्त परे है। वह प्राणिमात्र के हृदय-देश में निवास करता है (और भी देखें– गीता, 18/61)। भगवान हृदय में रहता है तो शरण किसकी जायँ? अगले ही श्लोक में उन्होंने कहा– **'तमेव शरणं गच्छ'** *(गीता, 18/62)*– अर्जुन! उस हृदयस्थ परमात्मा की शरण में जाओ। हृदयस्थ परमात्मा की शरण जानेवाला ही हिन्दू है। सम्पूर्ण समर्पण के साथ परमात्मा की शरण में जाने से सदा रहनेवाला जीवन तथा सदा रहनेवाली शान्ति प्राप्त होती है।

3. **एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर करना ही धर्म है।** परमात्मा पर्यन्त दूरी तय करने की योग-साधना की विधि-विशेष का नाम यज्ञ है। **'यज्ञार्थात्कर्मणो....'** *(गीता, 3/9)*– उस यज्ञ को कार्यरूप देना ही कर्म है। उस कर्म का आचरण ही धर्म है। इसका परिणाम है मृत्यु से परे अमृत तत्त्व परमात्मा में स्थिति–**'यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्'** *(गीता, 4/16)*।

4. **एक परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण ही धर्म का मूल है।** गीता के अनुसार–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ *(गीता 8/13)*

ओम्, जो अक्षय ब्रह्म का परिचायक है उसका जप; तथा एक परमात्मा का स्मरण; किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष के संरक्षण में ध्यान करने से परमात्मा हृदय में जागृत हो जाता है।

5. **'द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।'** *(गीता, 16/6)*

अर्जुन! मनुष्य केवल दो प्रकार का है– देवता और असुर। जिसके हृदय में दैवी सम्पद् कार्य करती है, वह देवता है; तथा

जिसके हृदय में आसुरी सम्पद् कार्य करती है, असुर है। अध्याय 9 में है–

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ *(गीता, 9/30)*

अत्यन्त दुराचारी भी एक ईश्वर का भजन करके शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है तथा सदा रहनेवाली शाश्वत शान्ति प्राप्त कर लेता है।

6. **आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।**
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ *(गीता, 8/16)*

अर्जुन! सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा और उनसे उत्पन्न सृष्टि, देवता तथा दानव दुःखों की खानि, क्षणभंगुर और नश्वर हैं।

'कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।' *(गीता, 7/20)*

कामनाओं से जिनकी बुद्धि आक्रान्त है ऐसे मूढ़बुद्धि ही एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य देवताओं की उपासना करते हैं। जो मनुष्य आदिशास्त्र गीता में निर्धारित विधि को छोड़कर अन्य विधियों से यजन करते हैं, वे ही क्रूरकर्मी, पापाचारी तथा मनुष्यों में अधम हैं। (देखें, गीता, 9/27, 17/6, और 16/19)

7. **नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।**
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ *(गीता, 2/40)*

गीतोक्त साधना में आरम्भ का नाश नहीं होता। इसमें आरम्भ भर कर दिया जाय तो यह जन्म-मरण के महान् भय से उद्धार करके ही छोड़ता है। आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलते हुए तत्त्व के अर्थरूप परमात्मा की प्रत्यक्ष जानकारी ज्ञान है और इसके अतिरिक्त जो कुछ है, अज्ञान है। देखें–

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। *(गीता, 13/11)*

8. **तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।**
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। *(गीता, 16/24)*

मानव मात्र के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में गीता शास्त्र ही प्रमाण है। इसका भली प्रकार अध्ययन करके तत्पश्चात् गीता में वर्णित योग-साधना का आचरण करके मानव अविनाशी परम पद, शाश्वत शान्ति और समृद्धि प्राप्त कर लेंगे।

9. गीतोक्त धर्म की एक अद्वितीय विशेषता है कि इसमें आरम्भ का नाश नहीं होता। इस गीतोक्त साधन का स्वल्प अभ्यास भी कर लिया जाय तो यह जन्म-मरण के बन्धन से उद्धार करके ही छोड़ता है। आप भले ही यह साधन छोड़ दें, किन्तु यह साधन जन्म-जन्मान्तरों तक आपका साथ नहीं छोड़ता और अगले जन्म में वहीं से पुनः आगे बढ़ जाता है जहाँ से साधन छूटा था। जब हर जन्म में वही गीतोक्त साधन करना है और अन्त तक वही धर्म रहता है, माया भी उसको मिटा नहीं सकती तो क्षुद्र मनुष्य कौन-सा धर्म परिवर्तन कर लेगा? धर्म परिवर्तन होता ही नहीं। जो लोग धर्म-परिवर्तन का प्रयास कर रहे हैं, वह रहन-सहन की व्यवस्था का परिवर्तन है, खान-पान, वेश-भूषा, वर्णमाला या रीति-रिवाज का परिवर्तन है, धर्म का नहीं। मनुष्य मात्र का धर्म एक है– परमात्मा की प्राप्ति। इसमें आप कौन-सा परिवर्तन करेंगे? भगवद्-प्राप्ति के लिए गीतोक्त साधन है इन्द्रियों का संयम, सद्गुरु का ध्यान! इसमें भी आप कौन-सा परिवर्तन करना चाहेंगे? इन्द्रिय-संयम के बिना, मन के निरोध के बिना कब किसने परमेश्वर को पाया है? इसलिए सबको इस आदि धर्मशास्त्र गीता के नियमों का पालन करना ही होगा।

जिन महापुरुषों ने एक ईश्वर को सत्य बताया, गीता के ही संदेशवाहक हैं। ईश्वर से ही लौकिक एवं पारलौकिक सुखों की कामना, ईश्वर से डरना, अन्य किसी को ईश्वर न मानना – यहाँ तक तो सभी महापुरुषों ने बताया; किन्तु ईश्वरीय साधना, ईश्वर तक की दूरी तय करना तथा ईश्वर में स्थिति प्राप्त कर लेना – यह केवल गीता में ही पूर्ण रूप से, एक स्थान पर, क्रमबद्ध रूप में सुरक्षित है।

10. गीता *(6/5-6)* के अनुसार मनुष्य को चाहिये कि अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपने आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे; क्योंकि जीवात्मा ही स्वयं ही अपना मित्र है और यही अपना शत्रु भी है। जिस पुरुष द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उसके लिए उसी की आत्मा मित्र है और जिसका मन, इन्द्रिय और शरीर जीते नहीं गये हैं, उसकी आत्मा ही उसका शत्रु बन जाती है।

11. गीता *(4/13)* के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि चार वर्णों की रचना मैंने की। तो क्या जन्म के आधार पर मनुष्यो को बाँटा? नहीं, गुणों के आधार पर कर्म को बाँटा गया। कौन-सा कर्म? नियत कर्म। यह है यज्ञ की प्रक्रिया, जिसमें होता है – श्वास में प्रश्वास का हवन, प्रश्वास में श्वास का हवन, इन्द्रिय-संयम, मन का शमन, दैवीय सम्पद् का अर्जन इत्यादि, जिसका शुद्ध अर्थ है आराधना। इस कर्म को चार श्रेणियों में बाँटा गया। जैसी क्षमतावाला पुरुष है, उसे उसी श्रेणी से आराधना करनी चाहिए। दूसरों की नकल करनेवाला भय को प्राप्त होता है।

इन विभिन्न श्रेणी के साधकों को क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण की संज्ञा दी गयी है। शूद्रवाली क्षमता से कर्म का आरम्भ होता है और साधन में उन्नति करते हुए वही साधक क्रमशः

ब्राह्मण बन जाता है; और इसके आगे जब वह परमात्मा में प्रवेश पा जाता है तब ब्राह्मण वर्ण से भी ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार वर्ण एक ही साधक का ऊँचा-नीचा स्तर है, न कि जाति।

12. गीता *(3/35–41)* के अनुसार – काम और क्रोध अग्नि के समान भोग भोगने से कभी तृप्त न होनेवाले, बड़े पापी हैं। इनके वशीभूत होकर प्राणी पाप का आचरण करता है। जैसे धुएँ से अग्नि और मल से दर्पण ढँक जाता है, जैसे जेर से गर्भ ढँका रहता है उसी प्रकार काम, क्रोधादि विकारों से ज्ञान ढँका रहता है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इसके वासस्थान कहे जाते हैं। यह काम मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान को आच्छादित कर जीवात्मा को मोह में डालता है। अतः इन्द्रियों को वश में करके, ज्ञान और विज्ञान का नाश करनेवाले इस पापी काम को मारना है। इस प्रकार गीता का युद्ध और गीता की साधना हृदय-देश की और अन्तर्जगत् की लड़ाई है। इस शरीर से यह इन्द्रियाँ बलवान है, इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है, बुद्धि से परे आपकी आत्मा है। वही आत्मा हैं आप! इसलिए इन्द्रिय, मन और बुद्धि का निरोध करने में आप सक्षम हैं, अतः इस कामरूपी दुर्जय शत्रु को मारें। (देखें, गीता, 3/42–43)

13. अर्जुन लड़ना नहीं चाहता था। वह धनुष फेंककर रथ के पिछले भाग में बैठ गया था। किन्तु योगेश्वर श्रीकृष्ण ने केवल कर्म की शिक्षा देकर न केवल उसे कर्म समझाया, बल्कि उस कर्म पर चला भी दिया। युद्ध हुआ, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु गीता का एक भी श्लोक ऐसा नहीं है जो बाहरी मारकाट का समर्थन करता हो। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– **'अध्यात्मचेतसा....'** *(3/30–31)*– अर्जुन तू अन्तरात्मा में चित्त का निरोध करके अर्थात् ध्यानस्थ होकर सम्पूर्ण कर्म को मुझमें अर्पित करके आशा, ममता और संतापरहित होकर

युद्ध कर। जो मनुष्य श्रद्धाभाव से मेरे मत के अनुसार युद्ध में प्रवृत्त होते हैं, वे सम्पूर्ण कर्मों के बन्धन से छूट जाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण का यह आश्वासन किसी हिन्दू, मुसलमान या ईसाई के लिए नहीं, अपितु मानवमात्र के लिए है कि युद्ध कर। वस्तुतः यह अन्तर्देश की लड़ाई है, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ की लड़ाई है, धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र का संघर्ष है। आप ज्यों-ज्यों ध्यान में चित्त का निरोध करेंगे, विजातीय प्रवृत्तियाँ, काम-क्रोध, राग-द्वेषादि विकार बाधा के रूप में भयंकर आक्रमण करते हैं। उनका शमन करते हुए चित्त का निरोध करते जाना ही युद्ध है।

14. सद्गुरु– माननीय न्यायालय ने ध्यान दिलाया है कि हिन्दू धर्म में कोई माननीय गुरु नहीं है। हम सम्मानसहित माननीय का ध्यान श्रीमद्भगवद्गीता की ओर आकर्षित करना चाहेंगे। योगेश्वर श्रीकृष्ण के अनुसार कल्याण-पथ की जानकारी, उसका साधन और परमात्मा की प्राप्ति सद्गुरु से होती है। इधर-उधर तीर्थों में बहुत भटकने या धर्म के नाम पर कुछ भी पकड़े रहने से वह साधन या परमात्मा तब तक नहीं मिलता जब तक उसे किसी सन्त द्वारा न प्राप्त किया जाय। योगेश्वर श्रीकृष्ण के लिए गीता में **'गुरुर्गरीयान्'** *(गीता, 11/43)* कहा गया अर्थात् भगवान् आदिगुरु हैं। उन योगेश्वर श्रीकृष्ण से लेकर वैदिक ऋषियों से आज तक सद्गुरुओं की अविच्छिन्न परम्परा है। सच पूछा जाय तो गुरु केवल हिन्दू धर्म का शब्द है क्योंकि परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन कर उसमें स्थिति प्राप्त करनेवाले ही तत्त्वदर्शी सद्गुरु कहलाते हैं। संसार का अन्य कोई मज़हब ईश्वर के दर्शन, उसके स्पर्श या उसमें स्थिति प्राप्त करने की बात सोच भी नहीं सकता जबकि गीता *(14/27)* में भगवान श्रीकृष्ण सबको खुला आमन्त्रण देते हैं कि उस अविनाशी ब्रह्म का, अमृत का, शाश्वत धर्म

का और अक्षय आनन्द का मैं ही एकमात्र आश्रय हूँ अर्थात् परमात्मस्थित सद्गुरु ही इन सबकी प्राप्ति का माध्यम है।

15. केवल एक परमात्मा में श्रद्धा और समर्पण का संदेश देनेवाली गीता सबको पवित्र करने का खुला आमन्त्रण देती है। सृष्टि में कहीं भी रहनेवाले, अमीर अथवा गरीब, कुलीन या आदिवासी, पुण्यात्मा और पापी, स्त्री और पुरुष, सदाचारी एवं दुराचारी – सबका इस साधना में प्रवेश है। विशेषकर गीता पापियों के उद्धार का सुगम पथ बताती है, पुण्यात्मा तो भजते ही हैं। गीता किसी विशेष व्यक्ति, जाति, वर्ण, पंथ, देश, काल, या किसी रुढ़िग्रस्थ सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है। यह सार्वलौकिक तथा सार्वकालिक धर्मशास्त्र है। यह प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति, प्रत्येक आयु के स्त्री-पुरुष के लिए है। संक्षेप में गीता सम्पूर्ण मानव जाति का धर्मशास्त्र है।

❐ ❐ ❐